**ओ३म्**

**धर्म-अध्यात्म चर्चा**

**‘हे प्रभु ! मेरी पुकार सुनो’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

सृष्टि के आरम्भ में परमात्मा ने मनुष्यों को अमैथुनी सृष्टि में उत्पन्न किया था। परमात्मा ने हमें पांच ज्ञानेन्द्रियों व पांच कर्मेन्द्रियों के साथ मन, बुद्धि, चित्त व अहंकार भी प्रदान किये हैं जो अपना-अपना कार्य करते हैं। ईश्वर के द्वारा हमें बुद्धि दिया जाना तभी सार्थक कहला सकता है कि यदि वह बुद्धि के लिए अपना स्वरूप भी हम पर प्रकाशित करे। इतना ही नहीं, उससे यह भी अपेक्षा है कि वह हमारे लिए आवश्यक व हितकर सभी प्रकार का सत्य ज्ञान हमें प्रदान करें जिससे हम दिग्भ्रमित न होकर सत्य व ऋतु मार्ग पर चलकर जीवन के उद्देश्य को पूरा कर सके। **जीवन का उद्देश्य क्या है?** यह भी मनुष्य नहीं जान सकता जब तक कि उसकी ठीक-ठीक जानकारी हमें ईश्वर से प्राप्त न हो। वेदों एवं आप्त प्रमाणों के अनुसार जीवन का उद्देश्य धर्म-अर्थ-काम व मोक्ष की प्राप्ति है। इस लक्ष्य को प्राप्ति करने के सभी उपाय वेदों व ईश्वर का साक्षात्कार किये हुए ऋषियों-योगियों ने हमें प्रदान किये हैं जिससे हम जीवन में अभ्युदय व मृत्यु के पश्चात मोक्ष को प्राप्त हो सकते हैं। मोक्ष से बड़ा कोई लक्ष्य मनुष्य जीवन का नहीं हो सकता।

वेद ईश्वर से प्राप्त वह ज्ञान है जो उसने सृष्टि के आदि में सबसे अधिक पवित्र चार शुद्ध आत्माओं को दिया था। इस कारण से ईश्वर पर पक्षपात का आरोप नहीं लगता क्योंकि सृष्टि की आदि में अन्य मनुष्यों की इन चार ऋषियों के समान योग्यता व पात्रता नहीं थी। आज भी हम देखते हैं कि किसी विद्यालय में जो विद्यार्थी प्रथम आता है व इसके बाद दूसरे व तीसरे स्थान पर आने वाले विद्यार्थियों को ही पुरस्कृत करते हैं और इन्हें इसके बाद की उच्च श्रेणी में सहर्ष प्रवेश दिया जाता है जबकि दूसरों को प्रवेश तो मिल सकता है परन्तु उनका स्थान इनके बाद में आता है। आज हम ईश्वरीय ज्ञान ऋग्वेद 1/45/3 मन्त्र के भावों को प्रस्तुत कर रहें हैं जिन्हें वेदों के सुप्रसिद्ध आचार्य डा. रामनाथ वेदालंकार जी ने प्रस्तुत किया है। वेद मन्त्र है—**‘प्रियमेधवदत्रिवज् जातवेदो विरूपवत्। अंगिरस्वन्महिव्रत प्रस्कण्वस्य श्रुधी हवम्।।‘** वेदाचार्य रामनाथ जी ने इसे **‘हे प्रभु ! मेरी भी पुकार सुनो’** शीर्षक देकर इसकी व्याख्या की है।

मन्त्र के भावों की व्याख्या करते हुए वह कहते हैं कि **प्रभु के आगे खड़े-खड़े भले ही दिन-रात पुकार मचाते रहो, पर वे प्रत्येक की पुकार पर कान नहीं देते।** वे पुकार सुनते हैं प्रियमेध की, अत्रि की, विरूप की, अंगिरस की। प्रियमेध उसे कहते हैं जिसे मेधा या उत्कृष्ट बुद्धि प्रिय होती है। प्रियबुद्धि मनुष्य सदा बुद्धिसंगत प्रार्थनाएं ही करता है। एक अच्छे-खासे बालक को अकस्मात् यह रोग हो गया कि वह रात्रि में चिल्ला उठता था कि राक्षस पकड़ रहा है, बचाओ, बचाओ, और फिर उसकी घिग्घी बंध जाती थी। उसका कारण था उसके पिता की ओर से छोटी-छोटी बातों पर उसे भयंकर ताड़नाएं और यातनाएं दिया जाना। पर पिता इस कारण को न समझ, देवी का प्रकोप जान बालक के स्वास्थ्य के लिए देवी-जागरण कराने लगे। **यह बुद्धिसम्मत पुकार नहीं थी, इसलिए उनकी पुकार अनसुनी हो गयी।** बालक के स्वास्थ्य का बुद्धिसंगत उपाय तो यह था कि पिता बालक को शारीरिक यातनाएं देना बन्द कर देते तथा उस पर प्रेम दर्शाते।

अत्रि (अ-त्रि) उसे कहते हैं, जो आधिदैविक, आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक तीनों प्रकार की विघ्न-बाधाओं की परवाह न करता हुआ आगे बढ़ने का प्रयास करता रहता है। आधिदैविक बाधाएं हैं भूकम्प, नदियों की बाढ़, अतिवृष्टि, अनावृष्टि आदि। अधिभौतिक बाधाएं हैं शत्रु मनुष्यों या सिंह, व्याघ्र आदि प्राणियों से उत्पन्न की गयी विपत्तियां। आध्यात्मिक बाधाएं होती हैं शारीरिक रोगों या काम-क्रोध आदि के आक्रमण। इन सब बाधाओं को नगण्य करके आगे बढ़ते रहनेवाले ‘अत्रि’ की पुकार को भी प्रभु सुनते हैं। भक्षणार्थक ‘अद्’ धातु से त्रिप् प्रत्यय करने पर भी ‘अत्रि’ शब्द सिद्ध होता है, जिसका अर्थ होता है काम, क्रोध आदि शत्रुओं के वश में न होकर उन्हें खा जानेवाला मनुष्य। उसकी भी प्रार्थना अनसुनी नहीं होती। विरूप उस मनुष्य को कहते हैं, जो विविध अच्छे रूपों को धारण करता है। समाजसेवक, जननेता, दीनोद्धारक आदि अनेक रूप उसके होते हैं। उसकी पुकार भी प्रभु के दरबार में अनसुनी नहीं होती। अंगिरस् तपस्वी मनुष्य को कहते हैं मानो जो अंगारों पर बैठा हुआ है। उसकी पुकार भी प्रभु द्वारा सुनी जाती है।

कण्व मेधावी का वाचक है। उसके पूर्व ‘प्र’ लगा देने पर अतिशय अर्थ सूचित होता है। अतः प्रस्कण्व का अर्थ है अतिशय मेधावी। मन्त्र में प्रस्कण्व कह रहा है कि हे महान् व्रतोंवाले अग्नि प्रभु ! जैसे तुम प्रियमेध आदि की पुकार सुनते हो, वैसे ही मेरी भी पुकार सुनो तथा मुझे संकटों से जूझने का बल देकर मेरा उद्धार करो। जैसे तुम महान् व्रतों वाले हो, वैसे ही मुझे भी महाव्रतों का पालन कत्र्ता बना दो।

**इस मन्त्र से ईश्वर ने मनुष्यों को यह शिक्षा दी है कि यदि तुम चाहते हो कि मैं तुम्हारी पुकार व प्रार्थनाओं को सुनू व उन्हें पूरा करूं तो तुम्हें पहले प्रियमेध, अत्रि, विरूप, अंगिरस व प्रस्कण्व बनना होगा जिसका अर्थ व तात्पर्य ऊपर बताया गया है। यदि ऐसा नहीं करेंगे तो हमारी पुकार व प्रार्थनाएं नहीं सुनी जायेंगी। हम सभी मतों व धर्मों के बन्धुओं से निवेदन करते हैं कि वह इस वेदमन्त्र की शिक्षा पर विचार कर इससे लाभ उठायें।**

उपर्युक्त मन्त्र का ऋषि प्रस्कण्वः काण्वः है, देवता अग्निः है तथा मन्त्र का छन्द अनुष्टुप् है। वेदमन्त्र के पदों वा शब्दों के अर्थ हैं- (प्रियमेधवत्) जैसे प्रियमेध की {सुनते हो} (अत्रिवत्) जैसे अत्रि की {सुनते हो} (विरूपवत्) जैसे विरूप को {सुनते हो}, (अंगिरस्त्) जैसे अंगिरस् की {सुनते हो}, वैसे ही (महिव्रत) हे महान् व्रतोंवाले (जातवेदः) सर्वज्ञ सर्वान्तर्यामी प्रभु ! तुम (प्रस्कण्वस्य) मुझ प्रस्कण्व की (हवम्) पुकार (श्रुधि) सुनो।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**